 ISSN: 2582-6530

मनमाया लिम्बूनी: विक्रमी संवत्

मूल कृति: भीम दाहाल
अनुवादक: सुवास दीपक

इस चबूतरे पर कोई अपनी या अपने आत्मीयजन की आत्मा की शांति के लिए आता हो या अपने दु:ख बाँटने को इस पचड़े में गोवर्धन बाँस्तोला अपना सिर खपाना नहीं चाहता। बात सिर्फ इतनी-सी है कि कोई हट्टा-कट्टा किसान डेढ़-दो मन धान का बोरा उतार कर तंबाकू का कश खींच कर तो कोई कमजोर बटुक चढ़ाई के रास्ते यहाँ पहुँच कर कुछ पल बैठ कर अपनी थकान मिटाता है।

उस ओर टीले की प्राथमिक पाठशाला से उसे चौथी श्रेणी में उत्तीर्ण कराने वाला यही चबूतरा है। गणित के कठिन सवाल उसने इसी चबूतरे पर बैठकर हल किये हैं और नेपाली भाषा के जनक आदिकवि भानुभक्त आचार्य द्वारा विरचित आठ पंक्तियाँ[1] भी उसने यहीं बैठकर कंठस्थ की हैं। आज तो सिर्फ बाकी के "मनमाया लिम्बूनी और विक्रमी संवत्" स्पष्ट स्मृतिपट वाले इस चबूतरे से उसका एक जाती रिश्ता है। ठंडे पहाड़ों की सिलबट्टे की तरह फिसलन भरी चट्टान से यदि यह चबूतरा न बना होता तो यह और वह और उसका पोता, सभी इस युग में नहीं होते। चट्टान ही युग का प्रहार सहन कर सकता है और युग ही चट्टान से थक कर भागता है, इसका प्रमाण उसने इसी चबूतरे से पाया है। लगन की गाँठ बाँध कर वैदिक ऋचा से अग्नि को साक्षी रख कर यज्ञ में फेरे लगाए और वही प्राणपन पत्नी उसे और उसकी रातों का तिरस्कार कर विलीन हो गई लेकिन इस चबूतरे ने उसे कभी अस्वीकार नहीं किया। इसके साथ उसका एक कभी न भूले जाने वाला रिश्ता है। एक राजदान दोस्त की तरह वह इसके साथ बैठ कर मनोविनोद करता है, हँसता है, रोता है। बारह बजे की रिसेस में उसके और इसके बीच के तादात्म्य में खलबलाहट डालने वाले उदंड स्कूली बच्चों को वह पतले बाँस की तिरछी छड़ी से दूर भगा देता है। कुछ दूर परे जाकर शरारती बच्चे हँसते हैं – मानो उसके और उसकी छड़ी का दौर्बल्य इन बच्चों को भी मालूम हो चुका है।

पचहत्तर सालों तक वसंत और पतझड़ देख चुके बूढ़े गोवर्धन को यदि कोई चाहता है तो यही मुश्किल से पाँच साल का उसका पोता है। वह उसी स्कूल में पढ़ता है, जहाँ वह पढ़ता था... परले टीले पर। पोते की तीन बजे छुट्टी होती है, और यहाँ वह उसका इंतजार करता रहता है। पोता उसके आगे-आगे चलता है, वह उसके पीछे-पीछे। घर पहुँचते हैं दोनों, हमेशा इसी तरह...!

गोवर्धन यह नहीं कहता कि उसका बेटा और बहू उसे नहीं चाहते। इज्जत मिलती है, प्यार मिलता है लेकिन किसको कितना देना है, उसे तोलना मुश्किल ही है। अंधेरी रात बहू के बाहूपाश में बिताने वाला

[1] भर् जन्म घाँस तिर मन् दिई धन कमायो/ नाम क्यै रहोस् पछि भनेर कुवा खनायो/ घाँसी दरिद्र घरको तर बुद्धि कस्तो/ म भानुभक्त धनी भैकन किन यस्तो ।/ मेरा ईनार न त सत्तल पाटिकै छन्/ जे धन चीजहरु छन् घर भित्रनै छन्/ त्यस घाँसीले कसरी आज दिए छ अर्ति/ धिक्कार हो म कन बस्नु न राखि किर्ति । (वाल्मिकी रामायण का सरल नेपाली भाषा में भावात्मक अनुवाद करने से भानुभक्त को नेपाली भाषा के 'आदिकवि' की उपाधि प्रदान की गई। उक्त पंक्तियाँ उन्होंने एक घसियारे से प्रेरित होकर लिखी, ऐसी मान्यता है।)

बेचारा पिरथीलाल तड़के ही उस रात भर के प्रेम को बिसरा कर कैसे अपने बाप से समझौता करवा सकता है? उसमें उसे पिरथीलाल का कोई कसूर नहीं दिखता है। आदमी बूढ़ा होता है – पोते बीरू को इसका ज्ञान नहीं है, इसीलिए पोते और गोवर्धन के बीच का प्रेम ही एक युग है – समयुगी, समकालीन हैं हम...।

पिरथीलाल को भी गर्म चुंबन और एक तप्त आलिंगन में गृहस्थ जीवन का सुखद पक्ष भोगने का अधिकार है। गोवर्धन की तरह अकेले हो जाने के बाद पिरथीलाल को भी खुद और बुढ़ापे के सहारा लाठी के बीच के संसार में गुजरने के लिए मजबूर होना पड़ेगा – एक अनपेक्षित संसार, एक बेमेल संसार!!

आदमी को बीमारी घसीट कर शवगाह तक नहीं ले जा सकती, विज्ञान कुछ राहत देता है। यदि विज्ञान ने विगत जीवन को तत्काल बिसराने वाली औषधि भी बनाई होती तो सभी बूढ़े तरुणाई के नृत्य करते होते! मौत को बिसरा कर जिंदगी से पुनः समझौता करने वाला वह दिन आदमी के चंद्रमा पर पैर रखने के दिन की तरह गौरवशाली दिन होता!

पोते और उसके बीच का अंतराल यही उम्र ही तो है!

उनतालीस साल तक स्वस्थानी का व्रत रख कर चालीसवें साल में गोवर्धन की पत्नी मर गई। वह माघ महीने की हड्डियाँ गला देने वाली ठंड की परवाह न कर वह हर रोज सुबह स्नान करती थी।

गोवर्धन बाँस्तोला न चाहते हुए अपने अतीत को सामने खड़ा पाता है।

मौत गोवर्धन की पत्नी राममाया के ही मुँह से पहले बोली थी। छप्पन साल की राममाया ने अपने खसम गोवर्धन को स्वस्थानी व्रत रखने की सलाह दी थी।

"तुम्हारे जाने से पहले ही अपनी माँग के ही साथ मेरी अर्थी उठ जाए– बस मेरी यही चाहना है। इस सिंदूर को पोंछकर, मंगलसूत्र निकालकर और काँच की चूड़ियाँ फोड़कर कैसे जिंदा रह सकूँगी? मेरी यही इच्छा है, तुम्हारे सामने मेरे प्राण-पखेरू उड़ें।"

राममाया ने अत्यंत सहजता के साथ मृत्यु का उच्चारण किया था। यह स्वाभाविक ही है कि तेरह साल से तिरसठ साल तक गोवर्धन को मृतात्मा में देखने की त्रासदी से बचाने के लिए जिंदगी से पलायन करना अर्थात् मरने की चाहना रखना नितान्त स्वाभाविक बात है। पचास सालों की गृहस्थी में दुनिया के अनगिनत सुख-दु:ख, शान्ति-अशान्ति और प्रेम-घृणा से सामना करना पड़ता है।

गोवर्धन अगले दिन भी काफी देर तक मनमाया के चबूतरे पर बिताता है। वर-पीपल के पीले पत्ते गिरे होते हैं, रात की हवा से। पिछली सर्दियों में न जाने किस घसियारे चोर ने जिस जगह से आधी टहनी काटी थी, उस जगह से आज तक पानी रिसता रहता है। बूढ़ा दरख्त है, नयी कोंपले कहाँ से फूटेंगी!

परले गाँव का होगा, ससुराल से अपनी नव-विवाहिता को लेकर लौटा मूँछों की पतली रेखा वाला युवक और कच्ची कली दुल्हन। गोवर्धन को पता चल जाता है कि उसे वहाँ बैठे देखकर वह युवक खुश नहीं था।

युवती ने सिंदूर कुछ ज्यादा ही लगा रखा था। ठीक ही है – गोवर्धन ने सोचा, 'सद्यःयौवना दुल्हन को ऐसा हृष्टपुष्ट दूल्हा मिलना किस्मत की ही तो बात है!'

युवक कुछ ज्यादा उतावले मिजाज का लगता है, नहीं तो गोवर्धन के वहाँ होते हुए भी इतने सट कर बैठने की जरूरत ही क्या थी! मनमाया तो केवल अंधेरे में प्यार करने को मानती थी। वह जैसे प्रेम में पूरी तरह डूब जाती थी। उसके प्रेम में भाषा अनुपस्थित थी– शब्द नहीं थे, केवल एक मूक प्रस्तुति। गोवर्धन भी इसी तरह अपनी दुल्हन लेकर आया था। गोकर्क से कुछ दूर पड़ने वाले नेजी नामक गाँव चबूतरे से अलग दिखता है। उस जमाने के कोमल पौधे आज पेड़ बन चुके हैं। रामभांग पुल के ऊपर की पहाड़ी पर बड़ा पहाड़ धसका था। अदरक की खेती से ग्रामवासियों की कमरें सीधी हो गईं थीं और फूस के छप्परों पर जीसीआई शीट लग गई थी।

... मनमाया अपनी अम्मा की गोद में सिर छुपा कर लगातार रो रही होती है – "मैं खसम के घर नहीं जाऊँगी अम्मा!"

मनमाया के लिए अम्मा के दुलार को गोवर्धन के प्यार में परिणत करने की एक अपरिहार्यता, एक अनिवार्यता थी। वक्त ने राममाया को गोवर्धन की ही परछाईं बना दिया। वह घबरा जाती जब गोवर्धन को मामूली बुखार चढ़ जाता। वह न जाने क्या-क्या, जाना-पहचाना हो न हो, पथ्य बनाकर खाने को देती।

गोवर्धन सिर उठाकर देखता है – 'विक्रम सम्वत्... मनमाया लिम्बूनी...' चबूतरे पर कम से कम मनमाया जिंदा है। मनमाया केवल उसी के सीने से चिपकी हुई...

इस साल के श्राद्ध में तो बेटे पिरथीलाल ने मुंडन नहीं किया। श्राद्ध भी अब एक समय-तालिका में पड़ने वाली तिथि ही रह गई है, एक बाध्यता!

पोता बीरू स्कूल से आ पहुँचता है।

"आज सर ने मेरे कान खींचे।" पोते की शिकायत।

आज के बच्चे गुरु की छड़ी और आगे की किताब के बीच कुछ और ही पढ़ते हैं। खेतों में पके आड़ू पढ़ते हैं। खेत में पकी हरी मक्की पढ़ते हैं। ज्ञान-विज्ञान में आसमान की तरह विस्तृत हो चुके ये सभी बच्चे जिंदगी के सभी सुख बचपन में ही पढ़ लेते हैं।

मेरे आगे-आगे चल रहा चंचल और उतावला बीरू रास्ते के किनारे गिर पड़ता है। नुकीले पत्थर से उसके माथे पर बड़ी लेकिन हल्की खरोंच लगती है। गोवर्धन बूढ़ा भी गिरते-गिरते बचता है और जल्दी-जल्दी पोते को उठाता है। एक जंगली बूटी हथेलियों में मसल कर ज़ख्म पर लगा देता है। कुछ न पाकर अपने गमछे का कोना फाड़ कर ज़ख्म पर बाँध देता है। वह बहू को पोते के गिरने और चोट लगने का वृतान्त सुनाता है।

उस दिन बहू श्वसुर को चाय कुछ देर से देती है। बीरू के ज़ख्म पर डिटोल से भिगोई रुई की पट्टी बाँध देती है। दो कदम चलने पर भी आजकल गोवर्धन ज्यादा थक जाता है। खाट पर लेट कर वह पास के टेबल से मनुस्मृति उठाकर पढ़ने लगता है। चश्मे के एक शीशे की पावर दूसरे शीशे से नहीं मिलती।

गोवर्धन के कानों में शब्द टकराते हैं –

"...बच्चा ही तो है! बड़े-बुजुर्गों को तो बच्चों को ठीक से उँगली पकड़ कर स्कूल से घर लाना चाहिए न! मेरे बच्चे के माथे पर कितनी गहरी चोट लगी है आज!"

पिरथीलाल की जोरू एक पड़ोसिन से बतिया रही होती है।

'बच्चों को उचित मार्गदर्शन मिल सकता तो दुनिया दूसरी ही होती! मेरी टाँगें थर-थर काँपती हैं। मैं चल सकता हूँ लेकिन जा कहाँ रहा हूँ...?' गोवर्धन जवाब सोच सकता है, जवाब का प्रारूप गढ़ सकता है लेकिन जवाब दे नहीं सकता।

बेटे पिरथीलाल ने कुछ नहीं कहा। केवल इतना कहा– "यह बीरू भी तो उतावला है!"

एक क्षण के लिए माँ की बात आगे न बढ़े, बीरू चुप हो जाता है और सोने का अभिनय करता है, लेकिन वह कुछ देर के बाद खुद को रोक नहीं पाता है। वह दादू के बिस्तर पर आकर उछल-कूद करने लगता है। गिलास की बची-खुची चाय को भी गटक लेता है।

"बाबा, मैं तो खुद गिर पड़ा था न? आपने तो मुझे धकेला नहीं था, न?" बोलते-बोलते वह सो जाता है।

***

मनमाया अल्पभाषी थी फिर भी उसकी बोली में सच होता था। उसकी अपने सिंदूर और मंगलसूत्र के साथ संसार छोड़ने की मन्नत का तात्पर्य केवल उसका गोवर्धन के प्रेम का भय और त्रासदी का भय नहीं है। वह एक निर्दिष्टता और एक मुट्ठी पवित्र विश्वास पर आस्था रखती थी।

***

औरों की तरह नहीं मिली गोवर्धन को गंगा-मैया!

... दिन भर बीमार भैंसों से लेकर भूखे भिखारियों तक को, फूलों और अगरबत्तियों से लेकर थुलथुल सेठों के मृत शरीर की चर्बियाँ तक को यही गंगा माई अपने में आत्मसात कर लेती हैं। 'राम नाम सत्य है' से लेकर मुट्ठी में छुरी लिए आदमी के दिलों को छलनी करने वाले लोग भी यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलते हैं गंगा के घाटों पर!

धर्म-अधर्म, निष्ठा और उदंडता सभी को अपने सीने में विलय करने वाली गंगाजी के घाट पर पहुँच कर गोवर्धन एक अप्रत्याशित आनंद से सरावोर था।

***

स्वस्थानी व्रत लेती माघ की कड़कड़ाती ठंड में नहाने की आदत बना चुकी राममाया गंगा में प्रसन्नचित्त स्नान करती है। काशी की नेपाली धर्मशाला से मणिकर्णिका घाट और दशाश्वमेध घाट से पहुँचने के लिए राममाया और गोवर्धन को काफी मशक्कत करनी पड़ी।

काशी की गलियों में दो कदम चलने पर रास्ता रोके साँड़ और दो कदम चलने पर मुच्छड़ और तोंदीले पंडे दहशत में डाल देते हैं। सिर पर नेपाली टोपी और गले में गमछा लटकाए काशी जाना सचमुच काशी लगने के समान ही है। हिंदी और नेपाली बोली के बीच के वाक्-युद्ध में पंडों को परास्त करने में कभी पीछे नहीं हटता गोवर्धन। इस बार से सर्दियों में जयकाशी विश्वनाथ की जय-जयकार लगाते गोली मिठाई और सिंदूर से पैसे ठगने आने वाले पंडों को गोवर्धन ने गाँव में वास न देने की ठान ली है।

गंगा स्नान कर विश्वनाथ मंदिर में पूजा करने के बाद गोवर्धन ने मनमाया को नाव चढ़ने की चाह भी पूरी करनी चाही। एक नाविक से दलाली बोली में बड़ी मुश्किल से दाएँ हाथ की पाँचों अंगुलियाँ दिखाकर भाड़ा तय हुआ।

राममाया बहुत डर गई। गंगा की लहरों पर नाव डगमगाती तो वह खसम की बाँह पकड़ लेती- "अरे नाव पलट रही है! राम! राम! राम!"

***

... गोवर्धन की अचानक नींद टूट जाती है। मुर्गे ने पहली बाँग दी थी। उसे काली मिर्च डाली गरम चाय पीने की तलब होती है। मनमाया दीवार की तरफ सोयी होती तो सिर्फ 'मुझे चाय की तलब हो रही है' कहना पड़ता। वह तत्काल उठकर बत्ती जलाती और एक बार खसम के माथे को छूती। बुखार के आसार होने पर वह स्वादिष्ट चाय बनाकर लाती और उसके बाद कहती- 'आज जेठा को खेत में पानी लगाने के लिए जरूर कहियो। लाल मिर्च की पौध तैयार है, जल्दी ही रोप देनी होगी। तुम्हें कहती लेकिन तुम्हें तो बुखार है!'

उसके बाद वह रात भर सो नहीं पाती थी। गोवर्धन बेफिक्र सोया रहता।

***

... लेकिन इस बार उसे सचमुच का बुखार था। सपने को याद कर वह अंधेरे में देखता रहा। लेकिन दरवाजे के कोने में काली बिल्ली की चमकती आँखों के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

गोवर्धन बाँस्तोला की मृत्यु अप्रत्याशित नहीं थी। पूरे पंद्रह दिनों तक बुखार रहने के बाद गोवर्धन को जिंदा रहने से ज्यादा मौत की उम्मीद ज्यादा लगने लगी। कुल दो महीने बिस्तर पर बिताने के बाद नींद में ही

उसका चोला उठ गया। एक घटना घट गई गाँव में। गोवर्धन ने कभी किसी का अहित नहीं किया। वह सभी का चहेता था- छोटे-बड़े सभी उसकी इज्जत करते थे।

जैसे कि दूसरों के साथ होता है, काफी रोना-धोना, उसकी मौत पर भी काफी रोना-धोना हुआ, काफी लोगों ने उसकी तारीफ के कसीदे गढ़े।

ठीक पिरथीलाल की अम्मा के स्मृति चबूतरे पर अर्थी ले जाकर पिण्ड देने के लिए लाश को रख दिया गया।

गोवर्धन ने क्या देखा?

कालजयी चार शब्दः 'मनमाया लिम्बूनीः विक्रम सम्वत्।'

....

*(**लेखकीय परिचयः** भीम दाहाल भारतीय नेपाली कहानी के चर्चित हस्ताक्षर हैं, वर्ष 2006 में उपन्यास 'द्रोह' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। इस कहानी का हिंदी अनुवाद वरिष्ठ साहित्यकार एवं अनुवादक सुवास दीपक द्वारा किया गया है। भारतीय नेपाली साहित्य एवं हिंदी भाषा को समृद्ध करने में सुवास दीपक की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय है।)*